International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology
© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

अद्वैतवेदान्त में सामानाधिकरण्य

डॉ. लक्ष्मी कान्त विमल
वरिष्ठ शोध अध्येता
श्री शंकर शिक्षायतन
डी.६/२५ वसंत विहार,
नई दिल्ली, भारत।

'तत्त्वमसि' यह महावाक्य तीन सम्बन्धों के द्वारा अखण्ड अर्थ का बोधक है।[1] ये सम्बन्ध तीन प्रकार के हैं- सामानाधिकरण्य, विशेषणविशेष्य तथा लक्ष्यलक्षण।[2] किसी भी वाक्य में एक विभक्ति से युक्त पदों में सामानाधिकरण्य होता है।[3] 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य में प्रयुक्त पद का धर्म सामानाधिकरण्य है।[4] एक वाक्य में स्थित अनेक पद जब विशिष्ट अर्थ बोधन में प्रवृत्त होते हैं, तो वहाँ पहले वाक्य में आये हुए पदों में सामानाधिकरण्य का विचार होता है।[5] 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों को ध्यान में रखकर 'पदयोः' इस द्विवचन का प्रयोग किया गया है, सामानाधिकरण्य तो सत्य आदि अनेक पदों में भी अभीष्ट ही है। अतः जो पद पर्याय नहीं है किन्तु उनकी वृत्तिता एक ही पदार्थ में है, उन पदों में रहने वाला सम्बन्ध सामानाधिकरण्य है ।[6]

मृगतृष्णा आदि में अधिष्ठान से अतिरिक्त अन्य वस्तु का अभाव है तथापि 'यह जल है' ऐसी बुद्धि होने से सामानाधिकरण्य देखा जाता है।[7] सामानाधिकरण्य नामक सम्बन्ध पदों में होता है।[8] 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य में

---

[1] इदं तत्त्वमसीतिवाक्यं सम्बन्धत्रयेणाखण्डार्थबोधकं भवति। वे. सा. ५०
[2] सामानाधिकरण्यं च विशेषणविशेष्यता।
लक्ष्यलक्षणसम्बन्धः पदार्थप्रत्यगात्मनाम्।। नै. सि.३.३
[3] एकविभक्त्यन्तानि पदानि समानाधिकरणानि। तै. उ. शां. भा. २.१.१०
[4] तत्त्वमस्यादिमहावाक्यस्थपदधर्मः सामानाधिकरण्यं प्रथमं भवति। नै. सि. च. ३.३
[5] सामानाधिकरण्यमत्र भवति प्राथम्यभागन्वयः। सं. शा. १.९६
[6] पदयोरिति द्विवचनं तत्त्वमस्याभिप्रायं बहूनामप्युलक्षणम् । अपर्यायपदानामेकार्थवृत्तित्वं सामानाधिकरण्यान्वय इति पदानामेव स इत्यर्थः। सं. शा. सा. सं. १.९७
[7] इदम् उदकम् इति मरीच्यादौ अन्यतराभावे अपि सामानाधिकरण्यदर्शनात्। गी. शां. भा. २.१६

सामानाधिकरण्य सम्बन्ध 'तत्' पद एवं 'त्वम्' पद में होता है।[9] जैसे 'शुक्लः पटः' यहाँ 'शुक्ल' एवं 'पट' पद की विभक्ति समान होने से एक ही पटरूप अर्थ में तात्पर्य है।[10] जिन शब्दों की प्रवृत्ति-निमित्त भिन्न हो, ऐसे दो अथवा अधिक शब्दों का एक ही अर्थ के लिये प्रयुक्त होना सामानाधिकरण्य है।[11] यहाँ प्रवृत्ति निमित्त का अर्थ इस प्रकार है। जैसे 'शुक्लः पटः' इस वाक्य में शुक्ल पद की प्रवृत्तिनिमित्त शुक्लत्व जाति में एवं पट पद की प्रवृत्तिनिमित्त पटत्व जाति में है। किन्तु शुक्ल और पट इन दोनों पदों का तात्पर्य एक पटरूप अर्थ में है। इन दोनों पदों में प्रवृत्ति का कारण अपनी-अपनी जाति है। सामानाधिकरण्य में तात्पर्य भेद नहीं होता है परन्तु शब्दप्रवृत्तिनिमित्त भेद अवश्य होता है। इसलिये एक विभक्तिक पदों में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध होता है, ऐसा शङ्कर ने स्वीकार किया है। वेदान्तसार के सुप्रसिद्ध टीकाकार रामतीर्थ ने सामानाधिकरण्य की परिभाषा में तात्पर्यसम्बन्ध को स्वीकार किया है। दो शब्दों का प्रवृत्तिनिमित्त भिन्न होने पर भी एक ही अर्थ में उन शब्दों का तात्पर्य सम्बन्ध सामानाधिकरण्य है।[12] रामतीर्थ ने संक्षेपशारीरक की अन्वर्थप्रकाशिका टीका में 'एकवृत्तिता' को प्रधानरूप से स्वीकार किया है। ऐसे दो पद जो परस्पर एक दूसरे के पर्याय न हो परन्तु दोनों में एक वृत्तिता हो, यह एकवृत्तित्व ही सामानाधिकरण्य है। [13] इस परिभाषा में 'भिन्नप्रवृत्तिनिमित्त' शब्द का समावेश इसलिये किया गया है कि अतिव्याप्ति दोष न हो जाय। जैसे 'घट कलश' है यहाँ भी सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है, किन्तु उनसे वाक्यार्थ बोध नहीं हो सकता है क्योंकि वे दोनो एक दूसरे के पर्याय हैं। इसलिये उनका सामानाधिकरण्य नहीं माना जाता है।[14]

द्युलोक और भूलोक 'द्युभुवौ' हैं। वे जिसके आदि हैं, वह द्युभ्वादि है। इस वाक्य में द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष, मन तथा प्राण आदि स्वरूप जो गुम्फित है, उसका आश्रय परब्रह्म ही हो सकता है। इन श्रुतियों में ब्रह्म आधार और द्युलोक, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि आधेय है।[15] अतएव 'सभी ब्रह्म' है ऐसा यहाँ सामानाधिकरण्य होता है।[16]

---

[8] (क) सामानाधिकरण्याख्यः सम्बन्धः पदयोरिह। मा. ३.१५
(ख) सामानाधिकरण्यं पदयोस्समभिव्याहारज्ञानम्। सि. बि. न्या. र. पृ. १

[9] पदयोः सामानाधिकरण्यम्। वे. सा. पृ. ५०

[10] समानविभक्त्यन्तयोः पदयोरेकस्मिन्नर्थे तात्पर्यं सामानाधिकरण्यम्। वे. सा. बा. बो. पृ. ८४

[11] भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोः शब्दयोरेकस्मिन्नर्थे प्रवृत्तिः सामानाधिकरण्यम् । वे. सा. सु. पृ. १०३

[12] भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोः शब्दानामेकस्मिन्नर्थे तात्पर्यसम्बन्धः सामानाधिकरण्यम्। वे. सा. वि. म. पृ.२११

[13] अपर्यायपदानामेकवृत्तित्वं सामानाधिकरण्यम्। सं. शां अ. प्र. १.१९७

[14] शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यमित्युक्ते घटकलशयोरपि सामानाधिकरण्यं स्यात्ततश्च ताभ्यामपि वाक्यार्थबोधः स्यात्। न च तदस्ति तयोः पर्यायत्वात् अतस्तद्वारणायोक्तं भिन्नेति। तत्त्वा. सं. अ. चि. कौ. १.४४

[15] तत्र त्वायतनवद्भावश्रवणात् 'सर्वं ब्रह्म' इति च सामानाधिकरण्यात्। ब्र. सू. शा. भा. १.३.१

[16] द्यौश्च भूश्च द्युभुवौ, द्युभुवावादी यस्य तदिदं द्युभ्वादि। यदेतदस्मिन्वाक्ये द्यौः पृथिव्यन्तरिक्षं मनः प्राणा इत्येवमात्मकं जगदोत्त्वेन निर्दिष्टं तस्यायतनं परं ब्रह्म भवितुमर्हति। वही

देवदत्त नामक किसी व्यक्ति को हमने काशी में देखा था। आज हमें वह पाटलिपुत्र में घूमता हुआ दिखाई पड़ गया। उसे देख कर हमें याद आया कि 'अरे यह तो वही देवदत्त है, जिसे हमने काशी में देखा था'। यहाँ पर उदाहरणरूप में उद्धृत 'यह वही देवदत्त है' इस वाक्य की यही पृष्ठभूमि है। इस वाक्य में प्रयुक्त 'वह' और 'यह' इन दो पदों में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध कैसे है? इसकी व्याख्या इस प्रकार से है-'वह' पद का प्रवृत्तिनिमित्त भूतकाल और काशी से विशिष्ट देवदत्त, तथा 'यह' पद का प्रवृत्तिनिमित्त वर्तमानकाल और पाटलिपुत्र से विशिष्ट देवदत्त है। इस प्रकार 'वह' और 'यह-दोनों पदों के प्रवृत्तिनिमित्त एक दूसरे से भिन्न हैं फिर भी दोनों पदों का एक ही देवदत्त व्यक्ति में तात्पर्य है। इसलिये इन दोनों पदों में सामानाधिकरण्य माना जाता है।[17]

इसी प्रकार 'वह तुम हो' इस वाक्य में 'तत्' पद का प्रवृत्तिनिमित्त परोक्षत्व, सर्वज्ञत्व और नियन्तृत्व आदि से विशिष्ट चैतन्य तथा 'त्वम्' पद का प्रवृत्तिनिमित्त अपरोक्षत्व, अल्पज्ञत्व, और नियम्यत्व आदि से विशिष्ट चैतन्य है। इस प्रकार प्रवृत्तिनिमित्त के भिन्न होने पर भी 'तत्' और 'त्वम्' दोनों पदों का तात्पर्य एक ही चैतन्य में है। अतः इन दोनों पदों में सामानाधिकरण्य है।[18]

'ऊँ' यह अक्षर 'उद्गीथ' है, इसकी उपासना करनी चाहिये।[19] यहाँ 'अक्षर' और 'उद्गीथ' दोनो ही पदों में समान विभक्ति होने के कारण सामानाधिकरण्य है। शङ्कर ने सामानाधिकरण्य के अर्थनिर्धारण के लिये चार तत्त्वों को स्वीकार किया है-अध्यास, एकत्व, अपवाद तथा विशेषण।[20]

अध्यास-दो वस्तुओं में से एक वस्तु सत्य होने के कारण ग्रहणस्वरूप है। उस ग्रहणरूप वस्तु में अन्य बुद्धि का आरोप होता है ऐसे बुद्धिपूर्वक अभेदात्मक आरोप को अध्यास कहते हैं। जिसमें जो बुद्धि अध्यस्त होती है उस अध्यास का आधारभूत पदार्थ दिखता रहता है फिरभी उसमें अन्य का आरोप किया जाता है। जैसे इतर बुद्धि विषयक नाम में ब्रह्म दृष्टि करने पर भी नाम बुद्धि बनी रहती है। वह नाम बुद्धि ब्रह्म बुद्धि से निवृत्त नहीं होती और जैसे प्रतिमा

---

[17] (क) सामानाधिकरण्यसम्बन्धस्तावद्यथा-'सोऽयं देवदत्तः' इत्यस्मिन् वाक्ये तत्कालविशिष्टदेवदत्त वाचक सशब्दस्यैतत्कालविशिष्टदेवदत्तवाचकायं शब्दस्य चैकस्मिन् पिण्डे तात्पर्यसम्बन्धः। वे. सा. ५१ पृ.१२३

(ख) यथा 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यत्र तत्कालविशिष्टदेवदत्तवाचकसशब्दस्य एतत्कालविशिष्टदेवदत्त वाचकायंशब्दस्य च एकस्मिन्देवदत्तपिण्डे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम्। तत्त्वा. सं. १.४४

[18] तथात्र 'तत्त्वमसि' इति वाक्येऽपि परोक्षत्वादि-विशिष्ट-चैतन्य-वाचक-तत्पदस्यापरोक्षत्वादि- विशिष्टचैतन्यवाचक-त्वम्पदस्य चैकस्मिंश्चैतन्ये तात्पर्यसम्बन्धः। वे. सा. ५१ पृ. १२४

[19] ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। छा. उ. १.१.१

[20] इत्यत्राक्षरोद्गीथशब्दयोः सामानाधिकरण्ये श्रूयमाणेऽध्यासापवादैकत्वविशेषणपक्षाणां प्रतिभासमानात् कतमोऽत्र पक्षो न्याय्यः स्यादिति विचारः। ब्र. सू. शां. भा. ३.३.९

आदि में विष्णु आदि दृष्टि का अध्यास करने पर भी प्रतिमा बुद्धि निवृत्त नहीं होती। उसी प्रकार यहाँ भी 'ऊँकार' अक्षर में 'उद्गीथ' दृष्टि करनी चाहिये अथवा 'उद्गीथ' में 'ऊँकार' दृष्टि करनी चाहिये।[21]

अपवाद-जहाँ किसी वस्तु में पहले से मिथ्या बुद्धि का निश्चय होने पर उसके बाद उत्पन्न हुई यथार्थ बुद्धि पहले वाली मिथ्या बुद्धि का निरास करने वाली होती है, वह अपवाद है। जैसे देह और इन्द्रियों के समूह में आत्मबुद्धि 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य के श्रवण के अनन्तर उत्पन्न होने वाली आत्मविषयक यथार्थ आत्मबुद्धि से निवृत्त होती है, अथवा जैसे दिशा की भ्रमात्मक

बुद्धि दिशा की यथार्थ बुद्धि से निवृत्त होती है। उसी प्रकार यहाँ भी अक्षर बुद्धि से उद्गीथ बुद्धि निवृत्त होती है, या उद्गीथ ज्ञान से अक्षर बुद्धि निवृत्त होती है।

एकत्व-जहाँ पर शब्दों का अर्थ भिन्न न हो वहाँ पर एकत्व भासित होता है। जैसे अक्षर विषयक श्रुति में अक्षर और उद्गीथ शब्दों में सामानाधिकरण्य है और भिन्न अर्थ न होने से एकत्व प्रतीत होता है। अक्षर और उद्गीथ का भिन्न अर्थ न होना जैसे 'द्विजोत्तम' 'ब्राह्मण' और 'भूमिदेव'।

विशेषण-सर्व वेदव्यापी "ऊँ" इस अक्षर के ग्रहण का प्रसंग आने पर उद्गीथविशेषण औद्गात्रविषयक 'ऊँ'कार का समर्पक होता है अर्थात् सामवेद में कहे गये 'ऊँ' कार की ही उपासना करो। जैसे नील कमल है उसे लाओ, यहाँ पर नील और उत्पल में विशेषण विशेष्य भाव है। उसी प्रकार सामवेदीय जो 'ऊँ' कार है जिसे उद्गीथ का अवयव भी कहते हैं उसकी उपासना करो।[22]

यहाँ तीनों पक्षों के दूषित होने से उनका निषेध है। केवल एक विशेषण पक्ष ही निर्दुष्ट है।[23]

अध्यास पक्ष मानने में यह दोष है कि अध्यास में जो बुद्धि अन्यत्र अध्यस्त होती है, उस शब्द की लक्षणा वृत्ति प्रसक्त होती है और उसके फल की कल्पना करनी पड़ती है यद्यपि अक्षर की उद्गीथरूप में उपासना का फल सुना जाता है और उद्गीथ अर्थ में अक्षर शब्द की लक्षणावृत्ति भी प्रसक्त होती है तथापि 'यह यजमान की कामनाओं को प्राप्त कराने

---

[21] तत्राध्यासो नाम द्वयोर्वस्तुनोरनिवर्तितायामेवान्यतरबुद्धावन्यतरबुद्धिरध्यस्यते, यस्मिन्नितर बुद्धिरध्यस्यतेऽनुवर्तत एव तस्मिंस्तद्बुद्धिरध्यस्तेतरबुद्धावपि। यथा नाग्नि ब्रह्मबुद्धा वध्यस्यमानायामप्यनुवर्तत एव नामबुद्धिर्न ब्रह्मबुद्ध्या निवर्तते। यथा वा प्रतिमादिषु विष्ण्वादिबुद्ध्यध्यासः। एवमिहाप्यक्षर उद्गीथबुद्धिरध्यस्यत उद्गीथे वाऽक्षरबुद्धिरिति। ब्र. सू. शां. भा. ३.३.९

[22] अपवादो नाम यत्र कस्मिंश्चिद्वस्तुनि पूर्वनिविष्टायां मिथ्याबुद्धौ निश्चितायां पश्चादुपजायमाना यथार्था बुद्धिः पूर्वनिविष्टाया मिथ्याबुद्धेर्निवर्तिका भवति। यथा देहेन्द्रियसंघाते आत्मबुद्धिरात्मन्येवात्मबुद्ध्या पश्चाद्धाविन्या 'तत्त्वमसि' (छा. उ. ६.८.७) इत्यनया यथार्थबुद्ध्या निवत्र्यते। यथा वा दिग्भ्रान्ति बुद्धिर्दिग्याथात्म्यबुद्ध्या निवर्त्यते। एवमिहाप्यक्षरबुद्ध्योद्गीथबुद्धिर्निवर्त्यत उद्गीथबुद्ध्या वाऽक्षरबुद्धिरिति। एकत्वं त्वक्षरोद्गीथशब्दयोरनतिरिक्तार्थवृत्तित्वम्। यथा द्विजोत्तमो ब्राह्मणो भूमिदेव इति। विशेषणं पुनः सर्ववेदव्यापिन ओमित्येतस्याक्षरस्य ग्रहणप्रसङ्ग औद्गात्रशेषस्य समर्पणम्-यथा नीलं यदुत्पलं तदानयेति। एवमिहाप्युद्गीथो य ओमकारस्तमुपासीतेति। ब्र. सू. शां. भा. ३.३.९

[23] तदिह त्रयः पक्षाः सावद्या इति पयुर्दस्यन्ते। विशेषणपक्ष एवैको निरवद्य इत्युपादीयते। वही

वाला होता है' आदि श्रुति से जो फल सुना जाता है, वह संगत नहीं है, क्योंकि वह अन्य का फल कहलाता है अर्थात् वह आप्ति आदि रूप से 'ऊँ' कार की दृष्टि का फल है। उद्गीथ के अध्यास का फल नहीं है।[24]

अपवाद पक्ष में भी फल का अभाव समान है। मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति उसका फल है यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसका पुरुषार्थरूप उपयोग फल नहीं ज्ञात होता है और कभी भी 'ऊँ' कार से 'ऊँ' कार की बुद्धिनिवृत्त नहीं होती तथा उसी भाँति उद्गीथ बुद्धि से उमीथ बुद्धि निवृत्त नहीं होती। इस वाक्य का तात्पर्य वस्तु तत्त्व के प्रतिपादन में है, यह भी नहीं कह सकते क्योंकि उपासना विधिपरक है।[25]

एकत्वपक्ष भी समीचीन नहीं है, क्योंकि उस पक्ष में दो बार शब्द का उच्चारण निरर्थक होगा, एक ही बार उच्चारण करने से विवक्षित अर्थ की परिपूर्ति होगी। होतृविषयक और आध्वर्य विषयक जो 'ऊँ'कार शब्द वाच्य अक्षर है, उसमें उद्गीथ शब्द की प्रसिद्धि भी नहीं है। उसी प्रकार साम के सकल द्वितीय भाग में जो उद्गीथ शब्द वाच्य है उसमें 'ऊँ'कार शब्द प्रसिद्ध नहीं है, जिससे अभिन्न अर्थ हो।[26]

तात्पर्य यह है कि उद्गीथ शब्द से केवल सामवेद में प्रयुक्त 'ऊँ'कार का ग्रहण होता है और अक्षर शब्द सामान्यरूप से सर्ववेदव्यापी 'ऊँ'कार का वाचक होता है। अतः अक्षर और उद्गीथ का भिन्न अर्थ होने से एकत्व पक्ष भी समीचीन नहीं है।

---

[24] तत्राध्यासे तावद्या बुद्धिरितरत्राध्यस्यते तच्छब्दस्य लक्षणावृत्तित्वं प्रसज्येत तत्फलं च कल्प्येत। श्रूयत एव फलम् ' आपयिता ह वै कामानां भवति' (छा. उ.१.१.७) इत्यादीति चेत्, न, तस्यान्यफलत्वात्। आप्त्यादिदृष्टिफलं हि तत्, नोद्गीथाध्यासफलम्। वही

[25] अपवादेऽपि समानः फलाभावः। मिथ्यानिवृत्तिः फलमिति चेत्? न पुरुषार्थोपयोगानवगमात्। न च कदाचिदप्योंकारादोंकारबुद्धिनिवर्तते उद्गीथाद्वोद्गीथबुद्धिः। न चेदं वाक्यं वस्तुतत्त्वप्रति पादनपरम्, उपासनाविधिपरत्वात्। ब्र. सू. शां. भा. ३.३.९

[26] नाप्येकत्वपक्षः सग्च्छते। निष्प्रयोजनं हि तदा शब्दद्वयोच्चारणं स्यात्। एकेनैव विवक्षितार्थसर्मपणात् । न च हौध्विषय आध्वर्यवविषये वाऽक्षर ओंकारशब्दवाच्य उद्गीथशब्दप्रसिद्धिरस्ति। नापि सकलायां साम्नो द्वितीयायां भक्तावुद्गीथशब्दवाच्यायामोंकार शब्दप्रसिद्धिर्येनानतिरिक्तार्थता स्यात्। ब्र. सू. शां. भा. ३.३.९